अर्थव्यवस्था
(Economy)

परिचय (Introduction)

अर्थव्यवस्था एक गत्यात्मक प्रणाली होती है, जो एक निश्चित अंचल के निवासियों को निश्चित जीवन के लिये भौतिक व आर्थिक संसाधन (वांछित वस्तुएँ एवं सेवाएँ, उनके क्रय के लिये वांछित आय का स्रोत, रोजगार आदि) उपलब्ध कराती है तथा जो स्वयं सभी प्रकार की आर्थिक क्रियाओं, अभिकर्ताओं, सम्बद्ध संस्थाओं के पारस्परिक संबंधों से मिलकर बनी होती है। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि अर्थव्यवस्था वह संरचना है, जिसके अन्तर्गत सभी आर्थिक गतिविधियों का संचालन होता है।

अर्थव्यवस्था, उत्पादन, वितरण एवं खपत की एक सामाजिक व्यवस्था है। यह किसी देश या क्षेत्र विशेष में अर्थशास्त्र का गतित चित्र है, जो कि किसी अवधि विशेष से सम्बंधित होता है।

उदाहरण स्वरूप यदि हम कहते हैं, 'समसामयिक भारतीय अर्थव्यवस्था' तो इसका तात्पर्य होगा, 'वर्तमान समय में भारत की सभी आर्थिक गतिविधियों का वर्णन' अर्थव्यवस्था अर्थशास्त्र की अवधारणाओं और सिद्धांतों का व्यवहारिक कार्य रूप है।

अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण (Classification of Economy)

अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर किया जाता है। कुछ प्रमुख आधारों पर अर्थव्यवस्था का वर्गीकरण निम्नलिखित है-

विचारधारा के आधार पर वर्गीकरण

संबंधित देशों की समसामयिक विचारधारा के अनुरूप विश्व में अर्थव्यवस्था को संगठित करने की अब तक तीन प्रणालियाँ प्रचलन में है, जो निम्नलिखित हैं-

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalistic Economy)

- ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें व्यापार या व्यवसाय पर नियंत्रण सरकार के हाथ में न होकर बाजार के हाथ में हो, 'पूँजीवादी अर्थव्यवस्था' कहलाती है।
- इस व्यवस्था में क्या उत्पादन करना है और उसे किस कीमत पर बेचना है, ये सब बाजार तय करता है, इसमें सरकार की कोई आर्थिक भूमिका नहीं होती है।
- इस सिद्धांत को एडम स्मिथ द्वारा दिया गया (अहस्तक्षेप का सिद्धांत)। उदाहरण- संयुक्त राज्य अमेरिका।

समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialistic Economy)

- ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें उत्पादन के समस्त साधनों पर राज्य का नियंत्रण हो तथा व्यापार व व्यवसाय में राज्य द्वारा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप किया जाता हो, समाजवादी अर्थव्यवस्था कहलाती है।
- इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन माँग के बजाय आवश्यकतानुसार किया जाता है।
- इस सिद्धांत का प्रारूप कार्ल मार्क्स तथा लेनिन द्वारा प्रस्तुत किया गया जबकि वॉल्शेविक क्रान्ति के द्वारा लागू किया गया। उदाहरण- पूर्व सोवियत संघ, चीन।

मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)

- ऐसी अर्थव्यवस्था जो अंशत: राज्य द्वारा और अंशत: बाजार द्वारा संचालित हो, मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलाती है।
- इस अर्थव्यवस्था का प्रारूप 1930 की मंदी के दौरान जॉन मेनार्ड कीन्स द्वारा प्रतिपादित किया गया।
- भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला देश रहा है। वर्तमान में अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ इसी प्रकार की अर्थव्यवस्थाएँ हैं।

विकास की अवस्था के आधार पर वर्गीकरण

अविकसित अर्थव्यवस्था (Undeveloped Economy)

- उन देशों या स्थानों को अविकसित कहा जाता है, जहाँ तीनों प्रकार के साधनों प्राकृतिक, भौतिक तथा मानवीय में से कोई भी एक नगण्य है। जैसे ध्रुवीय क्षेत्र, सहारा रेगिस्तान।

विकासशील अर्थव्यवस्था (Developing Economy)

- अल्प विकसित या विकासशील देश वह है, जहाँ एक ओर अप्रयुक्त अथवा अर्द्ध प्रयुक्त मानव शक्ति हो तो दूसरी ओर अप्रयुक्त प्राकृतिक साधनों की न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्धता पायी जाती है।
- इसके अतिरिक्त इन अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक, प्रौद्योगिकी एवं गैर-आर्थिक सीमाओं के कारण विकसित देशों की तुलना में आय, उपभोग, बचत तथा पूँजी निर्माण का स्तर निम्न होता है।

विकसित अर्थव्यवस्था (Developed Economy)

- उन स्थानों/देशों को विकसित कहा जाता है, जहाँ उत्पादन के तीनों साधनों प्राकृतिक, मानवीय तथा भौतिक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तथा उनका अनुकूलतम या समुचित उपयोग हो रहा है।

वैश्विक संबंधों के आधार पर वर्गीकरण

बंद अर्थव्यवस्था (Closed Economy)

- वह अर्थव्यवस्था जो बाह्य अर्थव्यवस्थाओं से किसी भी प्रकार से आर्थिक संबंध नहीं रखती है, अर्थात आयात-निर्यात की गतिविधियाँ शून्य होती है तथा निजी क्षेत्र की भूमिका नगण्य होती है, उन्हें बन्द अर्थव्यवस्था कहते हैं।

उदाहरण- उत्तर कोरिया (कुछ हद तक)

खुली अर्थव्यवस्था (Open Economy)

- वह अर्थव्यवस्था जिसका शेष विश्व के साथ आर्थिक संबंध होता है, खुली अर्थव्यवस्था कहलाती है। इस अर्थव्यवस्था में वस्तु और सेवाओं का अन्य देशों से अन्त:प्रवाह होता है। ऐसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन, उपभोग तथा पूँजी निर्माण बाह्य लेन-देन से प्रभावित होते हैं। खुली अर्थव्यवस्था में उदारवादी तथा निजी आर्थिक तत्वों का अधिक प्रभाव रहता है तथा आयात-निर्यात पर न्यूनतम प्रतिबंध रहते हैं। जैसे- हाँगकाँग, सिंगापुर आदि।

विभिन्न क्षेत्रकों के योगदान के आधार पर वर्गीकरण

किसी भी अर्थव्यवस्था में उनके क्षेत्रकों के सकल आय में योगदान के अनुसार अर्थव्यवस्थाओं के प्रकार का निर्धारण होता है।

कृषक अर्थव्यवस्था (Agrarian Economy)

- यदि किसी अर्थव्यवस्था के सकल उत्पादन में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान 50 प्रतिशत या इससे अधिक हो, तो ऐसी अर्थव्यवस्था 'कृषक अर्थव्यवस्था' कहलाती है।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत कृषक अर्थव्यवस्था थी।
- ऐसी अर्थव्यवस्था अविकसित अर्थव्यवस्था भी कहलाती है।

औद्योगिक अर्थव्यवस्था (Industrial Economy)

- ऐसी अर्थव्यवस्था में उसकी सकल आय में द्वितीयक क्षेत्र का हिस्सा 50% या इससे अधिक रहता है तथा इसी अनुपात में इस क्षेत्रक पर लोगों की निर्भरता भी रहती है।
- पूरा यूरोप तथा अमेरिका औद्योगिक अर्थव्यवस्था की स्थिति में रहा है।

सेवा अर्थव्यवस्था (Service Economy)

- ऐसी अर्थव्यवस्था जिसके अन्तर्गत सकल आय में तृतीयक क्षेत्र का योगदान 50 प्रतिशत या उससे ज्यादा होता है, सेवा अर्थव्यवस्था कहलाती है।
- इस अर्थव्यवस्था में ज्यादातर लोगों की आजीविका तृतीयक क्षेत्र से पूरी होती है।
- इसे विकसित उत्पादन संरचना भी कहते हैं।

आर्थिक प्रणाली (Economic System)

आर्थिक निर्णय लेने की प्रक्रिया या क्रियाविधि तथा कार्यशील संरचना संयुक्त रूप से आर्थिक प्रणाली या तंत्र कहलाती है।

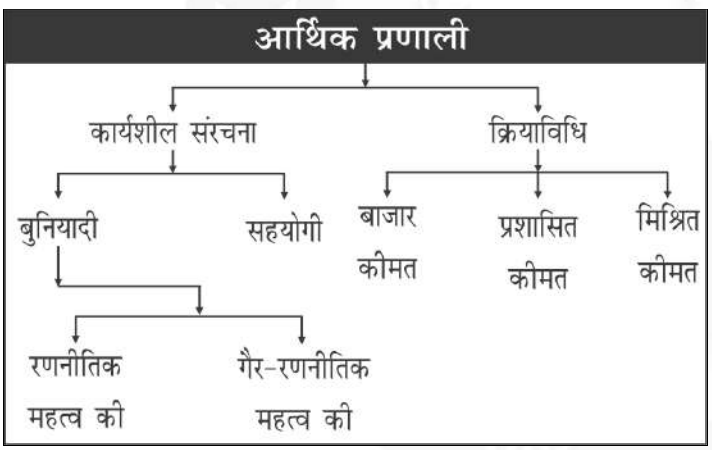

बाजार कीमत क्रियाविधि (Market Price Mechanism)

आर्थिक निर्णय लेने की वह विधि, जिसके अनुसार क्रेता व विक्रेता वस्तुओं एवं सेवाओं तथा अन्य प्रकार के संसाधनों के आदान-प्रदान के लिये मुक्त रूप से मोलभाव करते हैं और उसी मोलभाव द्वारा कीमत का निर्धारण होता है, इस क्रिया को बाजार कीमत क्रियाविधि कहते हैं। इस क्रियाविधि पर आधारित अर्थव्यवस्था 'मुक्त अर्थव्यवस्था' कहलाती है।

प्रशासित कीमत क्रियाविधि (Administered Price Mechanism)

आर्थिक निर्णय लेने की वह विधि जिसमें क्रेता व विक्रेता को मोलभाव करने की स्वतंत्रता न हो, बल्कि ये अधिकार वहाँ की सरकार या प्रशासन के पास हो तो इस विधि को प्रशासित कीमत क्रियाविधि कहते हैं। ऐसी अर्थव्यवस्था 'नियंत्रित अर्थव्यवस्था' कहलाती है।

मिश्रित कीमत क्रियाविधि (Mixed Price Mechanism)

आर्थिक निर्णय लेने की वह विधि जिसमें कुछ भागों में क्रेता व विक्रेता को मुक्त व्यापार की छूट हो व कुछ क्षेत्रों में सरकार का नियंत्रण हो, मिश्रित कीमत क्रियाविधि कहलाती है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' कहलाती है।

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र (Sectors of Economy)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था अपनी आर्थिक गतिविधियों को आय अर्जन के मामले में अधिकतम करना चाहती है, ताकि आर्थिक गतिविधियाँ लाभकारी से और अधिक लाभकारी हो सकें। आर्थिक संगठन की व्यवस्था कुछ भी हो, अर्थव्यवस्था की आर्थिक गतिविधियों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बाँटा गया है, जिन्हें अर्थव्यवस्था के क्षेत्रक कहा जाता है।

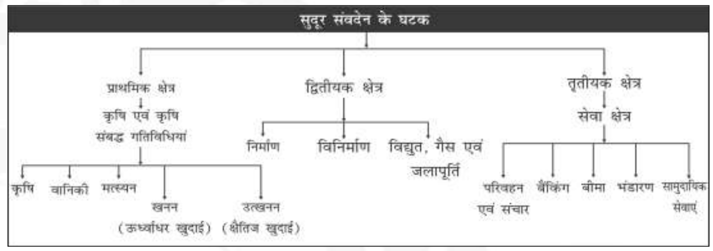

प्राथमिक क्षेत्र (Primary Sector)

नैसर्गिक संसाधनों के प्रत्यक्ष दोहन द्वारा उत्पादित वस्तुओं को प्राथमिक वस्तु कहते हैं तथा इनके उत्पादन में लगी संस्थागत व्यवस्था को 'प्राथमिक क्षेत्र' कहते हैं। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था के प्राकृतिक क्षेत्रों का लेखांकन किया जाता है। इसे कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र भी कहा जाता है।

उदाहरण- कृषि, उत्खनन, पशुपालन, मछलीपालन।

द्वितीयक क्षेत्र (Secondary Sector)

प्राथमिक वस्तुओं में एक या कई बार मूल्यवर्धन द्वारा उत्पादित नई वस्तुओं को द्वितीयक वस्तु कहते हैं तथा द्वितीयक वस्तुओं के उत्पादन में शामिल संस्थागत व्यवस्था को 'द्वितीयक क्षेत्र' कहते हैं। इसे 'औद्योगिक क्षेत्र' भी कहा जाता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत मुख्यत: अर्थव्यवस्था की विनिर्मित वस्तुओं का लेखांकन किया जाता है।

उदाहरण- लौह व इस्पात उद्योग, वस्त्र उद्योग, वाहन, बिस्किट आदि।

तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector)

इस क्षेत्र में सेवाओं को शामिल किया जाता है, और सेवाओं के उत्पादन कार्य में लगी संस्थागत व्यवस्था को 'तृतीयक क्षेत्र' कहा जाता है।

उदाहरण- बैंकिंग, बीमा, पर्यटन, शिक्षा, चिकित्सा आदि।

अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्र (Other Sectors of Economy)

- **चतुर्थक क्षेत्र** (Quaternary Sector)- अर्थव्यवस्था के इस क्षेत्र में बौद्धिक गतिविधियों को शामिल किया जाता है। जैसे- सरकार, संस्कृति, पुस्तकालय, सूचना प्रौद्योगिकी व अनुसंधान संबंधित गतिविधियाँ इस क्षेत्र में शामिल हैं।
- **पंचम क्षेत्र** (Quinary Sector)- इसमें समाज या अर्थव्यवस्था में उच्च स्तरीय निर्णय लेने वाले संस्थानों जैसे- मीडिया, विश्वविद्यालय और गैर लाभकारी संस्थान आदि को शामिल किया जाता है।

उत्पादन के साधन *(Means of Production)*

- ***भूमि***– यह उन सभी प्राकृतिक संसाधनों को संदर्भित करता है जो प्रकृति के मुफ्त उपहार है। इसके अंतर्गत मृदा, नदियाँ, जल, वन, पहाड़, खदान, समुद्र, वायु, सूर्य आदि को शामिल किया जाता है।
- ***श्रम***– मानव शरीर तथा मस्तिष्क में पायी जाने वाली उत्पादन शक्ति को श्रम कहते हैं। शरीर की उत्पादन शक्ति शारीरिक श्रम तथा मस्तिष्क की उत्पादन शक्ति बौद्धिक श्रम कहलाती है।
- ***पूंजी***– मानव निर्मित संसाधनों की उत्पादन शक्ति को पूँजी कहते हैं। स्वरूपगत लक्षणों के आधार पर इसे तीन भागों में बाँटा जाता है–
    - भौतिक पूँजी
    - वित्तीय पूँजी
    - बौद्धिक पूँजी
- ***उद्यम***– यह एक संश्लिष्ट उत्पादन शक्ति है जो निम्न तीन प्रकार की उत्पादन प्रवृत्तियों से मिलकर बनी होती है।
    - ***नवाचार प्रवृत्ति***– किसी कार्यक्रम में नये विचारों एवं संसाधनों के उपयोग को अपनाने की प्रवृत्ति नवाचार कहलाती है।
    - ***प्रबंधन प्रवृत्ति***– विभिन्न प्रकार के संसाधन धारकों के उत्पादन प्रयासों को संगठित करके निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति की प्रवृत्ति को प्रबंधन प्रवृत्ति कहते हैं।
    - ***जोखिम प्रवृत्ति***– नपे-तुले रूप में जानबूझ कर जोखिम उठाने की प्रवृत्ति को जोखिम प्रवृत्ति कहते हैं।

आर्थिक संवृद्धि, विकास और अल्पविकास
(Economic Growth, Development and Under Development)

आजकल सभी लोग आर्थिक संवृद्धि की बात करते हैं और इस प्रकार के वातावरण में अर्थशास्त्रियों द्वारा आर्थिक संवृद्धि के सिद्धांत पर लगातार ध्यान देना और उसका विकास करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। परंतु तमाम विवेचन के बाद भी आर्थिक संवृद्धि की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं बन पाई है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने 'आर्थिक संवृद्धि' का अर्थ अलग-अलग लगाया है। कुछ अर्थशास्त्रियों की परिभाषा में मूलभूत अंतर हैं जबकि कुछ अन्य की परिभाषा में केवल सतही अंतर हैं। अर्थशास्त्रियों का एक वर्ग ऐसा भी है जो आर्थिक संवृद्धि की निश्चित परिभाषा देने की आवश्यकता ही नहीं समझता। इस वर्ग के अनुसार, 'आर्थिक संवृद्धि' का अर्थ अपने आप में स्पष्ट है और आर्थिक संवृद्धि को आसानी से राष्ट्रीय आय संबंधी समग्र राशियों (National Income Aggregates) के रूप में मापा जा सकता है। इस विचारधारा का प्रतिपादन हमें संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों द्वारा किए गए अध्ययन Measures of Economic Development in Underdeveloped Countries में मिलता है। कई अन्य अर्थशास्त्रियों का मत है कि स्पष्ट और दोषरहित परिभाषाओं का होना आवश्यक है। इस संदर्भ में रोनाल्ड ए. शीयरर का मत है कि सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनावश्यक वाद-विवाद और भ्रामक विचारों का प्रमुख कारण ही यह है कि मूल परिभाषाओं के बारे में उपयुक्त सावधानी नहीं बरती जाती। हमारा भी यही मत है कि भ्रान्तियों के निवारण के लिए आर्थिक संवृद्धि को किन्ही मापनीय कसौटियों (Measurable criteria) के रूप में परिभाषित करना आवश्यक है।

- प्रस्तुत अध्याय में हम निम्नलिखित विषयों पर विचार करेंगे।
- आर्थिक संवृद्धि की संकल्पना क्या है?
- आर्थिक विकास की संकल्पना क्या है?
- संवृद्धि और विकास में क्या अंतर है?
- अल्पविकास का अर्थ क्या है और उसके क्या सूचक हैं?
- अल्पविकसित देशों के क्या सामान्य लक्षण हैं?

आर्थिक संवृद्धि की संकल्पना *(Concept of Economic Growth)*

आर्थिक संवृद्धि को हम एक ऐसी वृद्धि के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो अत्यंत नीचे जीवन स्तर में फंसी हुई किसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था को अल्पावधि में ही ऊंचे जीवन स्तर पर पहुंचा सके। जो देश पहले से ही विकसित हैं उनमें इसका अर्थ होगा विद्यमान संवृद्धि दरों को बनाए रखना। यदि ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो तेज आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ औद्योगिकरण की प्रक्रिया भी जुड़ी हुई है। परंतु सही रूप में देखा जाए तो आर्थिक क्रियाओं का अधिकाधिक वाणिज्यिकरण ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक है।

आर्थिक संवृद्धि अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि– कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक संवृद्धि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थव्यवस्था का सकल घरेलू उत्पाद लगातार दीर्घकाल तक बढ़ता रहता है। इस संदर्भ में सकल राष्ट्रीय उत्पाद (Gross National Product) और सकल घरेलू उत्पाद (Gross domestic product) में अंतर का ध्यान रखना जरूरी है। ऐसा हो सकता है कि किसी देश के नागरिक अन्य देशों में भारी निवेश करें। इससे सकल राष्ट्रीय उत्पाद तो बढ़ जाएगा परंतु अर्थव्यवस्था पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा। इसलिए सकल घरेलू उत्पाद तो बढ़ जाएगा परंतु अर्थव्यवस्था पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा। इसलिए सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि की बात करना अधिक तर्कसंगत है। एक और बात जिसकी इस संदर्भ में चर्चा करनी आवश्यक है, वह यह है कि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि लगातार काफी लम्बे समय तक होती रहनी चाहिए। केवल कुछ समय के लिए वृद्धि (जैसे व्यापार-चक्र के समृद्धि काल में होती है) संवृद्धि नहीं कहलाएगी।

प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि– परंतु आर्थिक संवृद्धि को उपर्युक्त रूप से परिभाषित करना सही नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि जनसंख्या में वृद्धि सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि से अधिक होती है तो प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद में गिरावट होगी। निश्चय ही हम इसे आर्थिक संवृद्धि नहीं कहेंगे।

इसलिए बहुत से अर्थशास्त्रियों ने आर्थिक संवृद्धि को प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि के रूप में परिभाषित किया है। वस्तुत: आर्थिक संवृद्धि को इस रूप में परिभाषित करना सबसे अधिक उपयुक्त व तर्कसंगत है। इसलिए, इस पुस्तक में भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में हमने भी आर्थिक संवृद्धि को प्रति व्यक्ति उत्पाद (या प्रति व्यक्ति आय) में वृद्धि के रूप में परिभाषित किया है। परंतु इस संदर्भ में इस बात का भी ध्यान रखना जरूरी है कि देश की अर्थव्यवस्था में समयोपरि होने वाले संरचनात्मक परिवर्तन कई बार प्रति व्यक्ति उत्पाद में होने वाली वृद्धि से भी अधिक महत्वपूर्ण हो सकते हैं, इसलिए उन पर विचार करना चाहिए। चार्ल्स बीतलहाइम ने ठीक ही कहा है कि "आर्थिक संवृद्धि की चर्चा करते समय उद्देश्य केवल मात्रात्मक परिवर्तन (अधिक उत्पादन) न होकर गुणात्मक परिवर्तन (अधिक श्रमिक उत्पादकता) भी होना चाहिए। केवल गुणात्मक परिवर्तन द्वारा ही अर्थव्यवस्था उच्च (विकसित) स्तर पर पहुँच सकती है।

आर्थिक विकास क्या है? *(What is Economic Development?)*

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक अर्थशास्त्र में 'आर्थिक विकास' को अधिकतर 'आर्थिक संवृद्धि' के अर्थ में ही प्रयोग किया जाता था। परंतु अब इन दोनों संकल्पनाओं में अंतर किया जाता है। जहाँ आर्थिक संवृद्धि को राष्ट्रीय या घरेलू उत्पाद या प्रति व्यक्ति उत्पाद में वृद्धि के रूप में मापा जाता है वहाँ आर्थिक विकास में गुणात्मक पहलुओं पर भी विचार किया जाता है। अब केवल सकल घरेलू उत्पाद या सकल राष्ट्रीय उत्पाद तक सीमित न रहकर अर्थशास्त्री 'विकास प्रक्रिया' पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं। इस संदर्भ में प्रसिद्ध पाकिस्तानी अर्थशास्त्री महबूब-उल-हक का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है: "विकास की प्रमुख समस्या गरीबी की सबसे भयानक किस्मों पर सीधा प्रहार करना है। गरीबी, भुखमरी, बीमारी, अशिक्षा, बेरोजगारी और असमानताओं जैसी समस्याओं के

उन्मूलन को विकास के मुख्य लक्ष्यों में शामिल किया जाना चाहिए। हमें यह सिखाया गया था कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद को बढ़ाया जाना चाहिए क्योंकि इससे गरीबी का निवारण होगा। अब समय आ गया है कि हम इस संबंध को उलट दें। अब जरूरत इस बात की है कि हम मुख्यतया गरीबी पर ध्यान केंद्रित करें। इसके जरिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद को अपने आप उचित महत्व मिल जाएगा। दूसरे शब्दों में, अब सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दर पर कम और उसकी संरचना पर अधिक ध्यान देना जरूरी है।

परम्परागत विचारधारा (The Traditional Approach)- आज विकास अर्थशास्त्र में आर्थिक विकास से संबंधित दो मुख्य धारणाएं पाई जाती हैं। पहली धारणा जिसे 'परम्परागत धारणा' कहा जा सकता है, आर्थिक विकास को आर्थिक संवृद्धि के रूप में परिभाषित करती है। परम्परागत विचारधारा में आर्थिक विकास एक ऐसी स्थिति है जिसमें सकल राष्ट्रीय (या घरेलू) उत्पाद 5 से 7 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ता रहे और उत्पादन एवं रोजगार संरचना में इस प्रकार परिवर्तन हो कि उसमें कृषि का हिस्सा कम होता जाए और विनिर्माण क्षेत्र (Manufacturing Sector) तथा तृतीयक क्षेत्र (Tertiary Sector) का हिस्सा बढ़ता जाए।

आर्थिक विकास की नई विचारधारा (New View of Economic Development)- जब व्यावहारिक तौर पर यह देखा गया कि बीसवीं शताब्दी के छठे और सातवें दशक में अल्पविकसित देशों की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या को आर्थिक संवृद्धि से कोई भी लाभ नहीं हुआ और इसकी स्थिति में किसी तरह का सुधार नहीं हुआ तो बहुत से अर्थशास्त्रियों ने 'परम्परागत' विकास विचारधारा को तिलांजलि दे दी। आठवें दशक में आर्थिक विकास की संकल्पना को पुन: परिभाषित किया गया और आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य गरीबी, असमानता और बेरोजगारी का निवारण रखा गया। इस दौर में 'पुनर्वितरण के साथ संवृद्धि' (Redistribution with growth) का नारा दिया गया।

अल्प विकास : अर्थ एवं सूचक
(Underdevelopment : Meaning & Indicators)

पिछले कुछ दशकों में अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों की समस्याओं में काफी रूचि दिखलाई है। इस काल में अनेक अर्थशास्त्रियों ने अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास से जुड़े हुए प्रश्नों पर काफी विस्तार के साथ लिखा है, परंतु फिर भी 'अल्प-विकास' की कोई भी सर्वमान्य परिभाषा दे सकना सहज नहीं है। संसार के विभिन्न क्षेत्रों को भी 'विकसित' और 'अल्पविकसित' में विभाजित कर सकना कठिन है। दरसल राष्ट्रों के बीच प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के वितरण में भारी असमानता है। उनके पूंजी निर्माण के स्तर, तकनीकी ज्ञान और आर्थिक संगठन में भी महत्त्वपूर्ण अंतर हैं। ये सभी विषमताएँ इस प्रकार की हैं कि किसी भी मापदण्ड के आधार पर राष्ट्रों को विकसित और अल्पविकसित के बीच विभाजित करना पूर्ण रूप से ठीक प्रतीत नहीं होता। संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा जर्मनी में प्राकृतिक साधनों की बहुतायत है। ये सभी देश विकसित माने जाते हैं। परंतु लैटिन अमेरिका तथा मध्य पूर्व के कुछ देश संपन्न प्राकृतिक संसाधनों के होते हुए भी अल्पविकसित कहे जाते हैं। भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान, इंडोनेशिया आदि देशों में जनसंख्या की अधिकता है जबकि अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के देशों में जनसंख्या का भार कम है। इन दोनों ही श्रेणियों में आने वाले देश अल्पविकसित हैं। अत: जनसंख्या की सघनता के आधार पर भी इस संबंध में कुछ निर्णय कर सकना कठिन है।

व्यावसायिक वितरण और अल्पविकास
(Occupational Distribution and Underdevelopment)

अक्सर जनसंख्या के व्यावसायिक वितरण की दृष्टि से राष्ट्रों को विकसित और अल्पविकसित की श्रेणियों में रखा जाता है। यह आधार निस्संदेह उपयोगी है परंतु विश्लेषण की दृष्टि से इसे पूरी तरह विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। यह धारणा सामान्यत: बनी हुई है कि अल्पविकसित देशों में राष्ट्रीय आय का बड़ा भाग कृषि तथा अन्य प्राथमिक क्षेत्रों में उत्पादित होता है। भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान, इथोपिया, नाइजीरिया जैसे देशों के विषय में यह सत्य है। परंतु मैक्सिको, ब्राजील तथा अर्जेन्टाइना की स्थिति इससे भिन्न है।

अल्पविकास के सूचक के रूप में नीची प्रति व्यक्ति आय
(Low Per Capita Income as an Index of Underdevelopment)

संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञों ने अल्पविकसित देश उसे माना है जिसमें प्रति व्यक्ति वास्तविक आय संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा पश्चिमी यूरोप की तुलना में कम है। इस प्रकार इस परिभाषा में अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमेरिकी देशों की 'कम प्रति व्यक्ति वास्तविक आय' पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

'गरीबी' पर आधारित अल्पविकास की संकल्पना
(Poverty Based Concept of Underdevelopment)

आधुनिक अर्थशास्त्री अब विकास को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं जिसके द्वारा गरीबी, आर्थिक असमानताओं और बेरोजगारी जैसी समस्याओं का निवारण हो सके। इसी प्रतिप्रेक्ष्य में देखें तो अल्पविकास एक अत्यंत दु:खदायी भौतिक व मानसिक स्थिति है।

अल्पविकसित/विकासशील देशों के सामान्य लक्षण
(Common Characteristics of Underdeveloped/ Developing Economics)

अल्प-विकास के विषय में मतभेद के बावजूद अल्पविकसित देशों के कुछ ऐसे लक्षण हैं जिनके बारे में प्राय: सहमति है। ये लक्षण निम्नलिखित हैं:

1. ***प्रति व्यक्ति आय का नीचा स्तर*** (Low per capita income)- प्राय: सभी अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है। स्पष्ट है कि इन परिस्थितियों में जनसंख्या का अधिकांश भाग बहुत गरीबी में गुजर-बसर कर रहा है।
2. ***पूँजी का अभाव*** (Scarcity of capital)- अधिकतर अल्पविकसित देशों में व्यापक गरीबी के कारण पूंजी निर्माण की दर बहुत कम है। जब आय-स्तर अधिक होता है तो बचत करने की क्षमता भी अधिक होती है। यही कारण है कि जापान में (जो अति-विकसित देश है) पूंजी निर्माण की दर बहुत ज्यादा है। कई अन्य विकसित देशों में उपभोक्तावाद (consumerism) के चलते बचत दर अपेक्षाकृत कम है।
3. ***जनसंख्या का भार*** (Burden of population)- अल्पविकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि की दर 2 प्रतिशत वार्षिक या उससे भी अधिक है। विकसित देशों का चिकित्सा संबंधी ज्ञान तथा अन्य आवश्यक सुविधाएँ जैसे ही अल्पविकसित देशों में मिलने लगती हैं, मृत्यु दर गिरने लगती है लेकिन गरीबी, अज्ञानता और धार्मिक रूढ़िवादिता के कारण परिवार नियोजन के कार्यक्रमों को अधिक सफलता नहीं मिल पाती। अत: इन देशों में जनसंख्या तेजी से बढ़ती है। इस स्थिति में आर्थिक विकास कठिन होता है।
4. ***कृषि पर निर्भरता*** (Dependence on agriculture)- अल्पविकसित देशों में लगभग 30 से 75 प्रतिशत तक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। बायर तथा यामें के शब्दों में "अविकसित देशों में सम्पूर्ण क्रियाओं एवं उत्पादन में कृषि का महत्वपूर्ण भाग होता है तथा आर्थिक कृषि जोतों की स्थापना, विस्तार एवं सुधार की दिशा में काफी प्रयास करने पड़ते हैं।" अल्पविकसित देशों

में कृषि पर अत्यधिक निर्भरता होने के बावजूद भी कृषि विकास का स्तर नीचा ही होता है। फलत: कृषि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली आय इस व्यवसाय में लगी हुई जनसंख्या के अनुपात में नीची होती है।

5. ***औद्योगिक पिछड़ापन*** (Industrial backwardness)- अल्पविकसित देशों में अधिक उद्योग नहीं होते। नतीजा यह होता है कि जहां एक ओर इस क्षेत्र में बहुत थोड़े लोगों को रोजगार मिलता है, वहीं दूसरी ओर क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान भी कम होता है।
6. ***श्रम उत्पादकता का नीचा स्तर*** (Low labour productivity)- अल्पविकसित देशों में श्रम उत्पादिता बहुत कम है। यह जीवन के नीचे स्तर का कारण (cause) भी है और प्रभाव (effect) भी। उत्पादिता के नीचे स्तरों पर आय का स्तर भी नीचा होता है और छोटे से वर्ग को छोड़कर, जनसंख्या का एक बड़ा भाग अत्यन्त गरीबी में रहता है।
7. ***तकनीकों का पिछड़ापन*** (Outmoded techniques)- अल्पविकसित देशों में उत्पादन संबंधी तकनीक पिछड़े हुए हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि इन देशों में साधनों की कमी के कारण अनुसंधान एवं विकास (Research and Development) पर बहुत कम खर्च किया जाता है।
8. ***बेरोजगारी*** (Unemployment)- अकुशल श्रमिकों में बड़े पैमाने पर बेरोजगारी अल्पविकसित देशों की प्रमुख विशेषता है। इन देशों के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में अधिकतर बेरोजगारी अनैच्छिक (involuntary) है। व्यापक गरीबी के कारण इन देशों में औद्योगिक वस्तुओं के बाजार अत्यन्त सीमित हैं।
9. ***मानव कल्याण का नीचा स्तर*** (Lower level of human wellbeing)- सामान्यत: एक व्यक्ति के कल्याण के माप के लिए तीन प्रकार के सूचकों का प्रयोग किया जाता है। ये सूचक हैं- उसकी चालू और संभाव्य वास्तविक आय, उसकी स्वास्थ्य एवं शिक्षा संबंधी उपलब्धियां। हम इस अध्याय में पहले लिख आए हैं कि अल्पविकसित देशों में विकसित देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति तथा सकल राष्ट्रीय आय बहुत कम है। जब हम इस तथ्य के साथ दो अन्य सूचकों पर विचार करते हैं तो हम पाते हैं कि विकसित देशों की तुलना में अल्पविकसित देशों में मानव कल्याण का स्तर बहुत अधिक नीचा है।
10. ***आर्थिक असमानताएं*** (Economic disparities)- विकसित देशों की तुलना में अल्पविकसित देशों में आय और सम्पत्ति के वितरण में असमानताएं अधिक होती हैं। उदाहरण के लिए यदि हम आय असमानताओं को मापने के लिए राष्ट्रीय आय में निर्धनतम 10 प्रतिशत लोगों के हिस्से की तुलना में सबसे धनी 10 प्रतिशत लोगों के हिस्से के साथ करें तो पाएंगे कि अधिकतर अल्पविकसित देशों जैसे कीनिया, नाइजीरिया, जांबिया, कोलंबिया, मलेशिया, ब्राजील, मेक्सिको, थाइलैंड इत्यादि में काफी अधिक आय असमानताएं हैं। इसके विपरीत, डेन्मार्क, नीदरलैंड, स्वीडन, जर्मनी, फ्रांस, जापान इत्यादि विकसित देशों में आय असमानताएं अपेक्षाकृत काफी कम हैं।
11. ***व्यापक गरीबी*** (High incidence of poverty)- अल्पविकसित देशों में कम प्रति व्यक्ति आय के कारण तथा आय- असमानताओं के कारण, व्यापक स्तर पर गरीबी पाई जाती है।
12. ***आर्थिक निर्भरता*** (Economic dependence)- एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अल्पविकसित देश बहुत समय तक औपनिवेशिक शोषण के शिकार रहे हैं। इनका औपनिवेशिक शोषण करने वाले पूंजीवादी देशों ने इन पर विदेशी व्यापार का ऐसा ढांचा थोपा जिससे ये देश प्राथमिक कृषि वस्तुओं (Primary Agricultural goods) के उत्पादक व निर्यातक बनकर रह गए और औद्योगिक वस्तुओं की मांग को पूरा करने के लिए इन पूंजीवादी देशों पर निर्भर हो गए। राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद भी काफी अरसे तक 'आर्थिक निर्भरता' की यह स्थिति चलती रही। यही कारण है कि भारत चाय और पटसन के निर्यात पर निर्भर बना रहा और ब्राजील कहवा के निर्यात पर, मलेशिया रबड़ के निर्यात पर तथा क्यूबा चीनी के निर्यात पर। पिछले कुछ वर्षों से आर्थिक आयोजन की प्रक्रिया के कारण अनेक अल्पविकसिक देशों के उत्पादन और व्यापार ढांचे में विविधीकरण हुआ है तथा औद्योगिक वस्तुओं के लिए विकसित देशों पर आर्थिक निर्भरता कम हुई है।

आर्थिक विकास के कारक (Factors In Economic Development)

आर्थिक विकास एक जटिल प्रक्रिया है। आर्थिक विकास के निर्धारक तत्व आर्थिक और अनार्थिक दोनों ही हैं। जहां तक आर्थिक तत्वों का संबंध है इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं-पूजी स्टॉक (capital stock) तथा संचयन (accumulation) की दर, विभिन्न क्षेत्रों में पूंजी-उत्पाद अनुपात, जनसंख्या का आकार एवं वृद्धि दर, कृषि क्षेत्र में आधिक्य (surplus) तथा भुगतान शेष की स्थिति। अनार्थिक कारकों में महत्वपूर्ण हैं- राजनीतिक स्वतंत्रता (या, दूसरे शब्दों में, औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति), न्यायपूर्ण सामाजिक संगठन, तकनीकी ज्ञान की उपलब्धि, भष्ट्राचार से मुक्ति, सामाजिक व्यवस्था और विकास के प्रति लोगों की 'तीव्र इच्छा' एवं दृढ़ संकल्प। इन सबसे अतिरिक्त प्राकृतिक साधनों की उपलब्धि भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और प्राय: विकास की सीमाएं निर्धारित करती है।

प्राकृतिक संसाधन (Natural Resources)

बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक तक बहुत से अर्थशास्त्री विभिन्न देशों के विकास अथवा अल्पविकास का विवेचन उनमें प्राकृतिक संसाधनों की सापेक्षिक (relative) उपलब्धि के द्वारा करते थे। जेकब वाइनर (Jacob Viner), विलियम जे. बॉमाल (William J. Baumol) तथा आर्थर ल्यूइस (Arthur Lewis) ने आर्थिक विकास के निर्धारकों में प्राकृतिक संसाधनों को बहुत महत्वपूर्ण माना है। जेकब वाइनर के शब्दों में, "आर्थिक विकास बहुत कुछ इसी बात पर निर्भर करता है कि भौतिक पर्यावरण अथवा मेरी शब्दावली में प्राकृतिक संसाधनों की श्रेणी या गुणवत्ता उत्पादन की दृष्टि से क्या है। प्रतिकूल भौतिक पर्यावरण विकास में एक प्रमुख बाधा बन सकता है।"

आर्थिक कारक (Economic Factors)

किसी भी देश के आर्थिक विकास में आर्थिक कारकों की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पूंजी स्टॉक और पूंजी संचयन की दर अक्सर इस बात का निर्धारण करते हैं कि किसी समय-विशेष पर उस देश की संवृद्धि हो पाएगी अथवा नहीं (या फिर संवृद्धि की दर क्या होगी)। अन्य कारकों में जनसंख्या का आकार तथा उसमें वृद्धि, शहरी जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा करने के लिए खाद्यान्नों का आधिक्य, भुगतान शेष की स्थिति, आर्थिक प्रणाली का स्वरूप इत्यादि महत्वपूर्ण हैं परंतु इन सब कारकों का महत्व उतना अधिक नहीं है जितना कि पूंजी निर्माण का।

1. ***पूंजी निर्माण (Capital formation)***- उत्पादन के स्तर को बढ़ाने के दृष्टिकोण से पूंजी निर्माण के महत्व को अर्थशास्त्री हमेशा के स्वीकार करते रहे हैं। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विकास अर्थशास्त्र के प्रसार के साथ ही, पूंजी निर्माण पर और ज्यादा जोर दिया जाने लगा है। वस्तुत: हेराल्ड-डोमर मॉडल में पूंजी को आर्थिक संवृद्धि में निर्णायक भूमिका दी गई है। प्राय: जब राष्ट्रीय आय का एक बड़ा अंश बचाकर पुन: निवेश किया जाता है तो आर्थिक विकास की गति तेज होती है।
2. ***कृषि का विक्रेय अधिशेष*** (Marketable surplus of agriculture)- देश के आर्थिक विकास के लिए निस्संदेह कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता

में वृद्धि महत्वपूर्ण हैं परंतु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है कृषि के विक्रेय अधिशेष में वृद्धि। विक्रेय अधिशेष (या बिक्री योग्य अधिशेष) कृषि उत्पादन का वह हिस्सा है जो ग्रामीण जनसंख्या की निर्वाह की आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद बच जाता है। इस विक्रेय अधिशेष पर ही शहरी क्षेत्रों के लोगों का गुजर बसर होता है।

3. ***विदेशी व्यापार की शर्तें*** (Conditions and terms fo foreigntrade)- बहुत लम्बे समय तक कई अर्थशास्त्रियों ने व्यापार के क्लासिकल सिद्धांत का सहारा लेकर यह तर्क दिया है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उन सब देशों के लिए लाभदायक है जो व्यापार में हिस्सा लेते हैं। इस संदर्भ में यह कहा जाता रहा है कि अल्पविकसित देशों को कृषि पदार्थों तथा कच्चे माल का उत्पादन व निर्यात करना चाहिए क्योंकि इनका तुलनात्मक लागत लाभ इसी में है। परंतु, जैसाकि लिस्ट (List) और कुछ अन्य अर्थशात्रियों ने तर्क दिया है, विशिष्टीकरण का यह स्वरूप अल्पविकसित देशों के लिए हानिप्रद सिद्ध हुआ है।
4. ***आर्थिक प्रणाली*** (Economic system)- आर्थिक विकास की दृष्टि से अर्थप्रणाली बहुत महत्त्वपूर्ण है। एक समय ऐसा था जब सरकारी हस्तक्षेप रहित पूँजीवादी अर्थप्रणाली को अपना कर तेजी से आर्थिक विकास करना सम्भव था जैसाकि इंग्लैंड ने किया परंतु आज की बदली हुई परिस्थितियों में इंग्लैंड की भांति विकास कर पाना असंभव है क्योंकि अल्पविकसित देशों के पास औपनिवेशिक शोषण की वैसी संभावनाएं नहीं हैं जैसी कि इंग्लैंड के पास थीं। जापान और जर्मनी ने भी पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली को अपनाया परंतु वहां विकास-पथ इंग्लैंड से नितान्त भिन्न था। आज के अल्पविकसित देशों को अपना विकास-पथ स्वयं चुनना होगा। इन देशों के सामने अब दो रास्ते हैं। प्रथम पूंजीवादी प्रणाली में आर्थिक आयोजन जैसा कि भारत में किया गया। इसमें विकास की दर धीमी रहती है। लेकिन दक्षिण कोरिया तथा कुछ दूसरे देशों ने पूँजीवादी ढ़ांचे में ही सरकारी सहयोग से तेजी के साथ विकास किया है। दूसरा रास्ता समाजवादी आर्थिक आयोजन का है। चीन ने इस रास्ते को अपनाया है और इसके द्वारा तेज आर्थिक विकास प्राप्त करने में सफलता पाई है।

आर्थिक विकास के अनार्थिक कारक (Non-Economic Factors in Economic Development)

ऐसा ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया में अनार्थिक तत्व आर्थिक तत्वों से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। यहां पर हम संक्षेप में आर्थिक विकास के निर्धारक अनार्थिक तत्वों का विश्लेषण करेंगे।

1. ***मानव संसाधन*** (Human resources)- आर्थिक विकास में जनसंख्या एक महत्त्वपूर्ण कारक है। मानव से ही उत्पादन कार्य के लिए श्रम की उपलब्धि होती है। यदि किसी देश में श्रम शक्ति कुशल होने के साथ-साथ कार्यक्षम भी है तो उसकी उत्पादन सामर्थ्य निश्चय ही अधिक होगी। दुर्बल, अशिक्षित, कुशल, और रूढ़ियों में फंसे हुए व्यक्तियों की उत्पादकता कम होती है और आर्थिक विकास में उनका योगदान भी अधिक नहीं होता।
2. ***राजनैतिक स्वतंत्रता*** (Political freedom)- विश्व इतिहास पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि संसार में विकास और अल्पविकास की प्रक्रियाएं एक साथ चली हैं। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, मलेशिया, कीनिया आदि देशों का अल्पविकास इंग्लैंड के विकास का परिणाम है। इंग्लैण्ड ने इन उपनिवेशों का जिस प्रकार शोषण किया उससे इंग्लैंड में तो भारी विकास हुआ परंतु ये सभी देश आर्थिक दृष्टि से पिछड़ गए। इसी प्रकार फ्रांस का विकास अल्जीरिया तथा हिंदचीन के अल्पविकास, नीदरलैंड्स का विकास इंडोनेशिया के अल्पविकास और लैटिन अमेरिकी देशों का अल्पविकास संयुक्त राज्य अमेरिका के विकास से जुड़ा हुआ है।
3. ***न्यायपूर्ण सामाजिक संगठन*** (Just social organisation)- विकास की प्रक्रिया उसी समय तेज हो सकती है जब देश के विकास कार्यक्रमों में सभी व्यक्तियों की भागीदारी हो और उसी समय संभव होगा जब सामाजिक संगठन न्यायपूर्ण है। जिस समाज का गठन इस प्रकार का है कि राष्ट्रीय आय में होने वाली सम्पूर्ण वृद्धि देश में सबसे अधिक सम्पन्न वर्गों के पास पहुंच जाती है। वहां जनसाधारण से आर्थिक विकास में योगदान की आशा करना व्यर्थ है।
4. ***तकनीकी ज्ञान एवं सामान्य शिक्षा*** (Technical knowledge and general education)- सभी लोग इस बात को स्वीकार करते हैं कि तकनीकी ज्ञान का विकास दर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। जैसे-जैसे वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति होती है वैसे-वैसे उत्पादकों को अधिक उत्पादकता वाली तकनीकों का ज्ञान होता है जिससे उत्पादन दर स्तर तेजी से बढ़ता है।
5. ***भ्रष्टाचार से मुक्ति*** (Eradication for corruption)- अल्पविकसित देशों में व्याप्त भ्रष्टाचार का इन देशों के आर्थिक विकास पर व्यापक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जब तक सरकारी तन्त्र भ्रष्ट है उस समय तक लोकतंत्रीय प्रणाली में सम्पन्न पूंजीपति, व्यापारी तथा अन्य लोग विभिन्न प्रकार से अपने व्यक्तिगत हित में राष्ट्रीय साधनों का दुरूपयोग करेंगे।
6. ***विकास के लिए आकांक्षा*** (Desire to develop)- विकास प्रक्रिया को एक मशीनी प्रक्रिया नहीं समझा जाना चाहिए। किसी भी देश में आर्थिक विकास की प्रक्रिया की गति उस देश के लोगों की विकास के लिए आकांक्षा पर निर्भर होती है। यदि चेतना का स्तर नीचा है और जनसाधारण ने गरीबी को अपना भाग्य मान लिया है तो आर्थिक विकास की अधिक संभावना नहीं होगी।

मानव विकास सूचकांक (Human Development Index- H.D.I.)

UNDP द्वारा प्रकाशित का प्रतिपादन पाकिस्तानी अर्थशास्त्री 'महबूब-उल-हक' द्वारा किया गया था। वर्ष 2010 से इसके अन्तर्गत तीन प्रतिमानों को शामिल किया जाता है। यथा-

1. जीवन प्रत्याशा सूचकांक (1/3)
2. शिक्षा सूचकांक (1/3)
3. आय सूचकांक (1/3)

ज्ञातव्य है कि सूचकांक का मान 0 से 1 के मध्य होता है। जिस देश के सूचकांक का मान जितना ही अधिक होता है। वह देश मानव सूचकांक की श्रेणी में उच्चस्थ रहता है। UNDP मानव विकास निर्मित करने के लिए उक्त सूचकों के न्यूनतम तथा अधिकतम मान का निर्धारण करती है। विभिन्न वर्षों के विभिन्न संघटकों के कई मानव मूल्य लेने के पश्चात् UNDP द्वारा मानव विकास सूचकांक के घटकों का न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य निम्न रूप में निर्धारित किया गया है।

इसके बाद प्रत्येक सूचक का मान ज्ञात किया जाता है। जो इन तीनों का औसत मानव विकास सूचकांक होता है।

HDI के उपरोक्त घटकों के सूचकांक निर्माण हेतु अधोलिखित सूत्र प्रयुक्त किया जाता है यथा-

$$\text{सूचकांक} = \frac{\text{वास्तविक मूल्य} - \text{न्यूनतम मूल्य}}{\text{उच्चतम मूल्य} - \text{न्यूनतम मूल्य}}$$

मानव विकास सूचकांक (HDI) तीनों सूचकांकों का ज्यामितीय माध्य होता है।

आयाम सूचकांकों से HDI ***प्राप्त करना*** (Calculating HDI from

Dimension Indices)- HDR 2016 में HDI को तीनों आयाम सूचकांकों के ज्यामितीय माध्य के रूप में परिभाषित किया गया है, अर्थात्

$HDI = (I_{\text{जीवन सं.}}{}^{1/3X I}$ शिक्षा $^{1/3X I}$ आय $^{1/3})$

HDI 2010 से पूर्व की रिपोर्टों में ज्यामितीय माध्य के स्थान पर साधारण माध्य का प्रयोग किया जाता था। कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस विधि की आलोचना की थी क्योंकि साधारण माध्य के प्रयोग का अर्थ यह है कि सूचकांक के आयामों में पूर्ण प्रतिस्थापन किया जा सकता है। ज्यामितीय माध्य का प्रयोग इस तथ्य पर आधारित है कि आयामों में पूर्ण प्रतिस्थापन संभव नहीं है।

मानव विकास रिपोर्ट 2020 में विश्व के 189 देशों को मानव विकास सूचकांक के आधार पर निम्न चार भागों में विभाजित किया गया हैं–

1. **अत्यधिक उच्च मानव विकास सूचकांक वाले देश**– जिनका सूचकांक 0.800 से अधिक है।
2. **उच्च मानव विकास सूचकांक वाले देश**– जिनका सूचकांक 0.700 से 0.799 तक के मध्य है।
3. **मध्यम मानव विकास सूचकांक वाले देश**– जिनका सूचकांक 0.550 से 0.700 तक के मध्य है।
4. **निम्न मानव विकास सूचकांक वाले देश**– जिनका सूचकांक 0.550 से कम है।

1. जीवन प्रत्याशा सूचकांक (Life Expectancy Index)- यह सूचकांक किसी भी देश की जनसंख्या का जन्म के समय सापेक्ष जीवन प्रत्याशा की उपलब्धि का मापन करता है। जिसे निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता है।

$$LEI = \frac{\text{वास्तविक जीवन प्रत्याशा} - \text{न्यूनतम जीवन प्रत्याशा}}{\text{अधिकतम जीवन प्रत्याशा} - \text{न्यूनतम जीवन प्रत्याशा}}$$

ज्ञातव्य है कि वर्ष 2019 के जन्म के समय भारत की जीवन प्रत्याशा HDR रिपोर्ट-2020 के अनुसार- 69.7 वर्ष है।

2. शिक्षा सूचकांक (Education Index-EI)- यह दो नये आंकड़ों पर आधारित है। यथा-

(i) ***स्कूलावधि के औसत वर्ष*** (MYS : Mean Years of Scchooling): 25 वर्षीय वयस्क द्वारा स्कूल में बिताए गए वर्ष, और

(ii) ***स्कूलावधि के अनुमानित वर्ष*** (EYS : Expected Years of Scchooling): बालक द्वारा अपने जीवन में स्कूल में बिताए जाने वाले वर्ष।

3. आय सूचकांक (In come Index)- जीवन निर्वाह स्तर के मापन हेतु प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (GDP) को प्रति व्यक्ति PPP आधारित सकल राष्ट्रीय आय (GNI) से प्रतिस्थापित किया गया है।

मानव विकास सूचकांक - 2021-22

मानव विकास सूचकांक का विचार इस बात पर जोर देने के लिए विकसित हुआ कि किसी देश के विकास का आकलन करने के लिए लोगों और उनकी क्षमताओं को, न कि केवल आर्थिक वृद्धि को अंतिम मानदंड होना चाहिए। HDI तीन आयामों में से प्रत्येक के लिए सामान्यीकृत सूचकांकों का ज्यामितीय माध्य है जिसमें लंबा और स्वस्थ जीवन, शिक्षा और एक सभ्य जीवन स्तर शामिल है। HDI पहली बार 1990 में प्रकाशित हुआ था और तब से, 2012 के अपवाद के साथ, इसे वार्षिक रूप से जारी किया गया है।

हालांकि, HDI की आलोचना की जाती है क्योंकि यह समाज में विभिन्न समूहों, निर्धनता, मानव सुरक्षा, सशक्तिकरण आदि के बीच मौजूद असमानताओं को प्रतिबिंबित नहीं करता है।

मानव विकास सूचकांक, 2021-22

मानव विकास सूचकांक, 2022 संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा जारी मानव विकास रिपोर्ट 2021-2022 का हिस्सा है। HDI 2022 में, 191 देशों को चार संकेत कों- जन्म के समय जीवन प्रत्याशा, विद्यालयी शिक्षा के औसत वर्ष, विद्यालयी शिक्षा के अपेक्षित वर्ष और प्रतिव्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI) के आधार पर मापित उनके HDI मूल्य के आधार पर रैंक किया गया है।

मानव विकास सूचकांक 2022 को यूएनडीपी द्वारा मानव विकास रिपोर्ट 2021-22: अनसर्टेन टाइम्स, अन सेटल्डलाइव्स: शेपिंग अवर फ्यूचर इन ए ट्रांसफॉर्मिंग वर्ल्ड में जारी किया गया है।

भारत का मानव विकास सूचकांक

मानव विकास सूचकांक (HDI), 2021-22 में भारत 191 देशों में से 132वें स्थान पर है। यह तीन दशकों में पहली बार लगातार दो वर्षों में इस के स्कोर में गिरावट दर्शाता है। 2020 में, भारत 0.642 के HDI मूल्य के साथ 130वें स्थान प रहै। COVID-19 के प्रकोप से पहले, 2018 में भारत का HDI मूल्य 0.645 था। HDI स्कोर में यह गिरावट वैश्विक प्रवृत्ति के अनुरूप है जो दर्शाता है कि देश COVID-19 महामारी के प्रकोप के बाद से मानव विकास में पिछड़ गए हैं।

भारत में 2021 में HDI में गिरावट के लिए जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में गिरावट को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जो 70.7 वर्ष से घटकर 67.2 वर्ष हो गई है।

भारत में विद्यालयी शिक्षा के अपेक्षित वर्ष 11.9 वर्ष हैं, और विद्यालयी शिक्षा के औसत वर्ष 6.7 वर्ष हैं।

प्रतिव्यक्ति GNI स्तर 6,590 डॉलर है। COVID-19 महामारी ने लैंगिक असमानता को भी बढ़ा दिया है, जिसमें वैश्विक स्तर पर 6.7% की वृद्धि हुई है।

एचडीआई 2021-22 में शीर्ष 3 रैंकिंग

1. स्विट्जरलैंड
2. आयरलैंड
3. आइसलैंड

आर्थिक विकास की अवस्थाएँ
(Stages of Economic Development)

आर्थिक विकास की कुछ अवस्थाएं ऐसी होती हैं जो एक-दूसरे के बाद क्रम से आती हैं। इसी को आर्थिक विकास की प्रक्रिया कहा जाता है। अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो. रोस्टोव ने अपनी पुस्तक "The Problems of Economic Growth" में आर्थिक विकास की पाँच अवस्थाएँ बतायी हैं। यथा-

परम्परावादी अवस्था (Traditional State)

इस अवस्था में देश के अधिकांश साधन कृषि व्यवसाय में लगे होते हैं तथा उद्योग-धन्धे बहुत ही पिछड़ी हुई अवस्था में होते हैं। उत्पादन का स्तर निम्न एवं प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम होती है। समाज का संगठन जातिवाद एवं पारिवारिक संबंधों पर आधारित होता है। देश की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था दुर्बल एवं अविकासित स्थिति में होती है।

आत्मस्फूर्ति से पूर्व की अवस्था (Pre take off to take-off)

इस अवस्था में समाज परम्परावादी विधियों को छोड़कर वैज्ञानिक विधियों एवं तकनीकों का प्रयोग करने लगता है। इस अवस्था में पूंजी-निवेश की मात्रा 10 प्रतिशत तक पहुँच जाती है तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन भी बढ़ जाता है। ग्रामीण जनसंख्या सड़कों व अन्य साधनों में वृद्धि होने के कारण शहरों में आकर बसने लगती है। खाद्यान्नों का उत्पादन आवश्यकतानुसार होने लगता है। औद्योगिक

कच्चे माल का उत्पादन भी बढ़ने लगता है। कृषि क्षेत्र की बचत उद्योगों में विनियोजित होने लगती है। सरकार द्वारा भी जन-कल्याण के कार्यों में अधिक योगदान दिया जाने लगता है।

आत्मस्फूर्ति अवस्था (Take-off Statge)

आत्मस्फूर्ति अवस्था को उस मध्यान्तर काल के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें विनियोग की दर इस प्रकार बढ़ती है कि जिससे प्रति व्यक्ति वास्तविक उत्पादन में वृद्धि होती है। इस अवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हैं तथा विकास अपने आप होने लगता है। कृषि व उद्योग में विकास का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगता है। निर्माणी उद्योगों में विकास तेजी से होने लगता है। देश के उत्पाादन में वृद्धि तेजी से होती है। राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ता है। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय बढ़ती है।

परिपक्वता की अवस्था (Drive to Maturity Stage)

इस अवस्था को स्वप्रेरित विकास की अवस्था (Stage of Self-sustained Growth) भी कहते हैं। इस अवस्था में साधनों का उपयोग इस सीमा तक होने लगता है कि देश में सभी आवश्यक वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में बनने लगती हैं। देश का व्यवसाय आर्थिक आधार पर किया जाने लगता है। इसका अर्थ है कि आर्थिक दृष्टि से जिन वस्तुओं का उत्पादन लाभकारी होता है केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, शेष को आयात करके ही काम चलाया जाता है। इस अवस्था में 15 से 20 प्रतिशत तक राष्ट्रीय आय का विनियोजन किया जाता है। ग्रामीण जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में रहना अधिक पसन्द करती है।

अधिकाधिक उपभोग की अवस्था (Stage of High Mass Consumption)

यह आर्थिक विकास की अन्तिम अवस्था है। इसमें जनता की सामान्य आवश्यकताएँ आसानी से पूरी हो जाती हैं और सामान्य उपभोग स्तर ऊपर उठ जाता है तथा समाज का प्रत्येक व्यक्ति उपभोग की उच्चतम सीमा पर पहुँचना एवं विशिष्ट वस्तुओं को काम में लाना चाहता है।

आर्थिक विकास की रणनीति (Strategy of Economic Development)

अल्पविकसित देशों में 'गरीबी का दुष्चक्र' (Vicious circles of poverty) निर्धनता की जननी है। निर्धनता का दुष्चक्र एक ऐसी वृत्ताकार प्रक्रिया है जिसका प्रारम्भ भी निर्धनता से होता है और अन्त भी निर्धनता के रूप में ही होता है। अर्थात् गरीबी के दुष्चक्र से प्रभावित देशों की कम वास्तविक आय के कारण कम बचत, कम बचत के कारण कम विनियोग, कम विनियोग के कारण कम उत्पादन तथा फलस्वरूप कम वास्तविक आय का जन्म होता है। वहीं दूसरी तरफ मांग पक्ष पर भी ऐसा ही दुष्चक्र प्रदर्शित होता है- कम वास्तविक आय कम क्रयशक्ति को जन्म देती है, फलत: मांग कम होती है। परिणामस्वरूप कम विनियोग एवं कम उत्पादन आय की प्राप्ति होती है। ध्यातव्य है कि गरीबी का यह दुष्चक्र स्वत: नष्ट नहीं होता अपितु इसमें संचयी रूप से बढ़ने की प्रवृत्ति विद्यमान होती है। कारण स्वरूप एक निश्चित रणनीति के तहत गरीबी के उक्त दुष्चक्र को तोड़ने की आवश्यकता है। बिना इसे तोड़े आर्थिक विकास सम्भव नहीं है क्योंकि इसमें अर्थव्यवस्था को अल्प आय स्तर पर खींचने की प्रवत्ति बहुत दृढ़ होती है।

एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था को स्वप्रेरित अर्थव्यवस्था में बदलने के लिए आर्थिक विकास की उचित रणनीति या संयोजन अपनायी जानी चाहिए। इस रणनीति या संयोजना को अपनाने में दो उद्देश्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. न्यूनतम प्रयास से अधिकतम सम्भावित विकास दर प्राप्त करना व।
2. विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने में अधिक समय न लगना।

आर्थिक विकास की संयोजना के संबंध में अर्थशास्त्रियों में दो विचारधाराएँ हैं:

1. ***संतुलित विकास*** (Balance Growth): यह विकास बहुमखी विकास के सिद्धान्त की अवधारणा पर आधारित है। इसमें अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों- कृषि, उद्योग एवं सेवाक्षेत्र, का एक साथ विकास किया जाता है, जिससे विभिन्न क्षेत्रों के उत्पाद के लिए तैयार बाजार मिल सके और अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में संतुलन प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार की विचारधारा रखने वाले अर्थशास्त्रियों में रेगनर नर्कसे, लीविस, ऐलिन यंग, रोजेनस्टीन रोडॉ आदि प्रमुख हैं।
   ध्यातव्य है कि संतुलित विकास के समर्थक अर्थशास्त्री रोजेनस्टीन रोडॉ विकास की धीमी प्रक्रिया से सहमत नहीं थे। उनके अनुसार- नियोजन का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को उसके निम्न-स्तरीय साम्य से झटके के साथ बाहर निकल कर संचयी विकास पर आरूढ़ करना होना चाहिए अर्थात् अर्थव्यवस्था में एक बारगी बहुत अधिक मात्रा में विनियोग किया जाय, जिससे आर्थिक ढाँचे की जड़ता टूट जाये और अर्थव्यवस्था ऊँचे उत्पादकता और वास्तविक आय की और बढ़ने लगे उनके उक्त सिद्धान्त को प्रबल प्रयास सिद्धान्त (Big Push theory) की संज्ञा प्रदान की गई।
2. ***असंतुलित विकास*** (Unbalance Growth): इसमें पहले कुछ चुने हुए, विकास की सम्भावना वाले क्षेत्रों में ही विकास किया जाता है, जिनके लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अत: आरम्भ में विकास उन्हीं क्षेत्रों में किया जाना चाहिए जो विकास को अधिक गति प्रदान कर सकते हैं। इसके लिए पूँजीगत वस्तुओं के उद्योगों को प्राथमिकता दी जा सकती है। ऐसा करने से उपभोक्ता उद्योगों के विकास के लिए आधार तैयार हो जाता है। बाद में उपभोक्ता उद्योगों को विकसित किया जा सकता है। यह संयोजना उन देशों के लिए बहुत ही उचित है जिनके साधन सीमित हैं। वे अपने विकास को धीरे-धीरे क्रमानुसार कर सकते हैं। असन्तुलित विकास की विचाराधारा को प्रतिपादित करने वाले अर्थशास्त्रियों में प्रो. रोस्ट्रेव, पॉल स्ट्रीटन एवं प्रो. हर्शमैन प्रमुख हैं।
3. विकास अर्थशास्त्र का विश्लेषण भी किसी एक संयोजना का समर्थन नहीं करता है। विकास अर्थशास्त्र का इतिहास यह बताता है कि अमरीका व ब्रिटेन ने सन्तुलित विकास की नीति अपनायी थी, जबकि रूस ने असन्तुलित विकास की, लेकिन बाद में उसने सन्तुलित विकास की नीति अपनायी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि दोनों (1) एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं, (2) दोनों एक-दूसरे पर आधारित हैं, स्वतंत्र नहीं।

भारतीय अर्थव्यवस्था के मूल लक्षण (Salient Feature of Indian Economy)

भारत को विश्व के विकासशील देशों में से एक मानते हुए इसकी मूल विशेषताओं को समझना बहुत महत्वपूर्ण है। यथा-

प्रति व्यक्ति आय का निम्न स्तर (Low per capita income)

भारत में प्रति व्यक्ति आय का स्तर बहुत नीचा है। वैश्विक मानव विकास रिपोर्ट-2020 के अनुसार वर्ष 2019 में लिंचेस्टाइन एवं कतर का प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय आय (GNI) जहाँ क्रमश: 131032 एवं 92418 डॉलर रहा, वही भारत का प्रतिव्यक्ति GNI मात्र 6681 डॉलर था।

व्यावसायिक ढांचा

भारत का व्यावसायिक ढांचा प्राथमिक स्तर पर उत्पादनशील है। कुल रोजगार का 46.1% (2015-16) भाग कृषि और सहबद्ध कार्य में लगा है और राष्ट्रीय आय में कृषि के योगदान नई श्रृंखला 2011-12 के अनुसार GVA का वर्ष 2019-20 में 17.8% का अंश था, जो विकसित देशों की अपेक्षा बहुत बड़ा है। जबकि कृषि

में प्रति व्यक्ति निम्न उत्पादकता पाया जाता है। कारण स्वरूप कृषि एक मन्द उद्योग (Depressed Industry) माना जाता है।

बेरोजगारी और अल्परोजगार

भारत में श्रम प्रचुर तत्व (Abundant factor) होता है। फलत: समस्त कार्यकारी जनसंख्या को लाभकारी रोजगार दिलाना बहुत कठिन होता है। विकसित देशों में बेरोजगारी की प्रकृति चक्रीय (Cyclical) होती है और समर्थ मांग के अभाव (Deficienty of effective Demand) में ही बेरोजगारी उत्पन्न होती है। भारत जैसे देशों में बेरोजगारी का स्वरूप संरचनात्मक (Structural) होता है तथा इसका बड़ा कारण पूँजी की कमी का होना है। कृषि में श्रम का सीमान्त उत्पादन नगण्य, शुन्य अथवा नकारात्मक है। अत: कृषि में अरदृश्य अथवा गुप्त बेरोजगारी (Disguised unemployment) विद्यमान है। वर्ष 2011-12 में कुल श्रमशक्ति का 5.6% दैनिक स्थित (CDS) बेरोजगारी के आधार पर और 2.2% सामान्य प्रास्थिति आधारित (US) बेरोजगारी थी। इसमें खुली बेरोजगारी (Open unemployment) और अल्प रोजगार प्राप्त दोनों का समावेश था।

निम्नस्तरीय मानव पूँजी (Human Capital)

भारतीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण लक्षण उसकी निम्न सतरीय मानव-पूँजी की किस्म है। यही कारण है कि UNDP ने वैश्विक देशों को मानव विकास सूचकांक (HDI) के आधार पर स्थान दिया है। इस सूचकांक के आधार पर भारत का HDR : 2021 में 132 वाँ स्थान पर है।

पूँजी का अभाव (Capital Deficiency)

भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्प विकास का एक अन्य मूल कारण पूँजी का अभाव है जो दो रूपों में प्रकट होती हैं, प्रथम, प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूँजी की निम्न मात्रा और द्वितीय, पूँजी-निर्माण (Capital formation) की प्रचलित निम्न दर। ग्रामीण क्षेत्रों में 51 प्रतिशत परिवारों की कुल परिसम्पत्ति में भाग केवल 10 प्रतिशत ही है। इसके विरूद्ध, 9.6 प्रतिशत समृद्ध परिवारों के पास कुल परिसम्पत्ति का 49.0 प्रतिशत समीक्षा-2020-21 के अनुसार वर्ष 2018-19 में सकल घरेलू बचत-GDP का 30.1% और सकल पूँजी निर्माण-GDP का 32.2% था। 12वीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में बचत दर GDP के 36.2/38.9 प्रतिशत तथा सकल पूँजी निर्माण GDP के 38.7/41.4 प्रतिशत के स्तर तक लाने का लक्ष्य रखा गया था।

परिसम्पत्तियों का दोषपूर्ण वितरण (Mal-distribution of Assets)

भारतीय अर्थव्यवस्था में परिसम्पत्तियों के वितरण में घोर असमानता है शहरी क्षेत्रों में यह असमानता और भी गहरा है। जहाँ 50.7 प्रतिशत परिवारों के पास कुल परिसम्पत्ति का केवल 5.3 प्रतिशत है वहीं इसके विरूद्ध कुल परिसम्पत्ति के लगभग 66 प्रतिशत पर 14.2 प्रतिशत शहरी परिवारों का आधिपत्य है।

औसत भारतीय का निम्न जीवन स्तर

भारत में अधिकतर जनता को संतुलित भोजन प्राप्त नहीं होता और इसकी अभिव्यक्ति कैलोरी तथा प्रोटीन के निम्न उपभोग में परिलक्षित होती हैं। जहाँ अधिकतर विकसित देशों में खाद्य का औसत कैलोरी उपभोग 3400 से अधिक है, वहाँ भारत में यह केवल 2415 है। जीवन को कायम रखने के लिए 2100 कैलोरी के न्यूनतम स्तर से यह थोड़ा सा अधिक है।

जनांकिकीय लक्षण (Demographic Characteristics)

अल्पविकास के साथ संबधित जनांकिकीय लक्षणों में जनसंख्या का अधिक घनत्व, 0-15 आयु वर्ग में जनसंख्या का एक बड़ा अनुपात और कार्यकारी आयुवर्ग अर्थात् 15 से 60 के बीच जनसंख्या का बड़ा अनुपात होते हुए भी अकुशल है। इसके अतिरिक्त जीवन की औसत प्रत्याशा कम होती है और शिशु मृत्यु दर अधिक होती है। ये सभी लक्षण भारतीय अर्थव्यवस्था में विद्यमान है।

आर्थिक दृश्चक्रों का जोर

विकासशील देशों में प्राय: आर्थिक दुश्चक्र कार्यशील रहते हैं, जिससे उनके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। भारत भी इस दोष से मुक्त नहीं है। ये चक्र मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं-

1. माँग पक्ष पर,

2. पूर्ति पक्ष पर

संक्षेप में, इनकी कार्य-विधि इस प्रकार की होती है।

(अ) *निर्धनता*- कम आवश्यकताओं की पूर्ति-शक्ति का ह्रास-अल्प कार्यक्षमता-कम उत्पादकता-कम आय-और अधिक निर्धनता।

(ब) *निम्न उत्पादकता*- निम्न उत्पादन-अल्प-राष्ट्रीय आय-अल्प प्रति व्यक्ति आय- अल्प बचत-अल्प-पूँजी निर्माण-पूँजी का अभाव-कम विनियोजन-अति निम्न उत्पादकता।

बाजार की अपूर्णताएँ

प्रो. मायर तथा बाल्डविन का विचार है कि अर्द्ध-विकसित देशों के बाजारों में अनेक अपूर्णताएँ उपस्थित रहती हैं; जैसे- उत्पादन के साधनों की अगतिशीलता, मूल्यों का बेलोचपन, बाजार की परिस्थितियों से अनभिज्ञता, विशिष्टीकरण का अभाव आदि। अत: ऐसी स्थिति में उपलब्ध साधनों का भी उचित प्रयोग नहीं हो पाता, जिससे आर्थिक विकास को गति नहीं मिल पाती। भारत भी इस समस्या से अछूता नहीं है।

कृषि का विक्रय अधिशेष

कृषि में, विपणन योग्य अधिशेष एक फसल के अधिशेष का प्रतिनिधित्व करता है जिसे लाभ के लिए बेचा जा सकता है जब एक किसान अपने खेत को बनाए रखने और संचालित करने की लागत को पूरा करने के लिए अपनी फसल बेचता है। किसान ने मशीनरी पर रखरखाव, श्रम लागत, उर्वरक और अपनी जमीन पर गिरवी भुगतान सहित खर्चे निर्धारित किए होते हैं। किसी भी किसान के लिए, उत्पाद का उत्पादन करते समय कई खर्च होते हैं जैसे निवेश की लागत, उत्पादन के लिए नियोजित कोई तकनीकी सुविधाएँ आदि।इन लागतों को किसानों को बाजार में अपने निवेश बेचकर वसूल करने की जरूरत है। इस प्रकार, विपणन योग्य अधिशेष, अधिशेष का केवल वह हिस्सा है जो अंतिम ग्राहकों को बेचने के लिए उपलब्ध होता है।

अधिकांश किसानों के पास घरेलू उपयोग से अधिक उत्पादन करने के लिए निवेश नहीं होता है जिसे बाजार में बेचा जा सकता है। अत:, ऐसे मामले में कम आय वाले क्षेत्रों के लिए विपणन योग्य अधिशेष लगभग शून्य होता है। चूँकि कृषि उद्योग बेतहाशा अप्रत्याशित हो सकता है और मौसम के उतार-चढ़ाव के लिए अतिसंवेदनशील हो सकता है, इसलिए यह अधिशेष खेत की असामान्य या अप्रत्याशित क्षति की लागत से जल्दी से खत्म हो सकता है।

1. घरेलू अधिशेष यह किसानों द्वारा स्व-उपभोग के उद्देश्य के लिए उपलब्ध फसलों की संख्या को संदर्भित करता है। यह उन फसलों की संख्या द्वारा प्रदर्शित होती है जिनका उपयोग किसान और उनके परिवार अपने दैनिक जीवन में उपभोग के लिए करते हैं।

2. राष्ट्रीय अधिशेष- राष्ट्रीय अधिशेष को एक कृषि उत्पादन के रूप में समझा जा सकता है, जो उस समाज की जरूरतों से अधिक है जिसके लिए इसका उत्पादन किया जा रहा है, और भविष्य के समय के लिए निर्यात या संग्रहीत किया जा सकता है।
3. कृषि अधिशेष- कृषि उत्पादन में अधिकता को बंपर फसल के रूप में जाना जा सकता है। कुछ वर्षों में, उपयुक्त मौसम की स्थिति, उन्नत सिंचाई सुविधाओं आदि जैसे कारकों के कारण अतिरिक्त कृषि उपज के उत्पादन में मदद मिलती है, इसे कृषि अधिशेष के रूप में जाना जाता है।

मानव विकास क्या है? (What is Human Development?)

1990 में सर्वप्रथम प्रकाशित Human Development Report ने मानव विकास को लोगों के सामने विकल्प (Choice) के विस्तार की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं-लम्बा और स्वस्थ जीवन यापन, शिक्षा प्राप्ति और अच्छा जीवन स्तर पाना। अन्य विकल्प हैं- राजनीतिक स्वतंत्रता, अन्य मानवाधिकारों की गारंटी, और आत्म-सम्मान के विविध तत्व। ये सभी जरूरी विकल्प हैं जिनके अभाव में दूसरे अवसरों में बाधा पड़ती है। अत: मानव विकास लोगों के विकल्पों में विस्तार के साथ-साथ होने वाले कल्याण के स्तर को ऊंचा करने की प्रक्रिया है। पॉल स्ट्रीटन ने ठीक ही लिखा है कि मानव विकास की संकल्पना मानव को कई दशकों के अंतराल के बाद पुन: केंद्रीय मंच पर प्रस्थापित करती है। इन बीते दशकों में तकनीकी संकल्पनाओं की भूल-भुलैया में यह बुनियादी दृष्टि अस्पष्ट बनी रही थी।

महबूब उल हक के अनुसार, "आर्थिक संवृद्धि और मानव विकास की विचारधारा में परिभाषात्मक अंतर यह है कि जहां आर्थिक संवृद्धि में केवल एक विकल्प अर्थात आय पर ही ध्यान केंद्रीत किया जाता है। वहाँ 'मानव विकास' में सभी मानवीय विकल्पों का विस्तार आ जाता है- ये विकल्प चाहे आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा राजनीतिक हों।"

सतत् विकास (Sustainable Development)

सतत् विकास लक्ष्य (एसडीजी) का जन्म रियो डि जेनेरियो में सतत विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में हुआ था। इसका उद्देश्य सार्वभौमिक लक्ष्यों का एक समूह तैयार करना था, जो हमारी दुनिया के सामने आने वाली पर्यावरणीय, राजनीतिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना कर सके।

SDGs मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स (MDGs) की जगह लेते हैं, जिसने गरीबी की गरिमा से निपटने के लिए वर्ष 2000 में एक वैश्विक प्रयास शुरु किया था। एमडीजी ने अत्यधिक गरीबी और भूख से निपटने, घातक बीमारियों को रोकने और अन्य विकास प्राथमिकताओं के साथ सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए औसत दर्जे का, सार्वभौमिक रूप से सहमत उद्देश्यों की स्थापना की।

15 वर्षो के लिए, एमडीजी ने कई महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रगति की है, आय गरीबी को कम करना, पानी और स्वच्छता तक पहुंच प्रदान करना, बाल मृत्यु दर को कम करना और मातृ स्वास्थ्य में सुधार लाना आदि। मुफ्त प्राथमिक शिक्षा के लिए एक वैश्विक आंदोलन भी शुरू किया गया। जिससे प्रेरित देश अपनी भावी पीढ़ियों में निवेश कर सकें। सबसे महत्वपूर्ण रूप से, एमडीजी ने एचआईवी/एड्स और मलेरिया तथा तपेदिक जैसे अन्य उपचार योग्य रोगों का मुकाबला करने में भारी प्रगति की है।

इसके अंतर्गत 17 मुख्य तथा 169 सहायक लक्ष्यों को निर्धारित करते हुए 5पी (People, Planet, Peace, Prosperity and Partnership) पर जोर दिया गया है। यह 17 लक्ष्य निम्न है:

जिसमें से पहले दो लक्ष्य सीधे-सीधे गरीबी निवारण से जुड़े हुए है।

सतत् विकास के 17 लक्ष्य

1. गरीबी की पूर्णत: समाप्ति
2. भुखमरी की समाप्ति
3. अच्छा स्वास्थ्य और जीवन तर
4. गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा
5. लैंगिक समानता
6. साफ पानी और स्वच्छता
7. सस्ती और स्वच्छ ऊर्जा
8. अच्छा काम और आर्थिक विकास
9. उद्योग, नवाचार और बुनियादी ढाँचा का विकास
10. असमानता में कमी
11. टिकाऊ शहरी और सामुदायिक विकास
12. जिम्मेदारी के साथ उपभोग और उत्पादन
13. जलवायु परिवर्तन
14. पानी और जीवन
15. भूमि पर जीवन
16. शान्ति और न्याय के लिए संस्थान
17. लक्ष्य प्राप्ति में सामूहिक साझेदारी

विकास का गाँधीवादी बनाम नेहरूवादी मॉडल (Models of Development : Gandhian vs. Nehruvian)

जनता पार्टी के सत्ता में आने से पूर्व 1977 तक भारतीय अर्थव्यवसथा के विकास का आधार नेहरू की निवेश रणनीति (Investment strategy) थी और इसी कारण इसे विकास का नेहरू मॉडल कहा जाता है। नेहरू मॉडल में भारी उद्योग को अर्थव्यवस्था का आधार माना गया और नेहरू यह चाहते थे कि अर्थव्यवस्था की बुनियाद मजबूत की जाए ताकि विदेशी सहायता पर निर्भरता कम की जा सके। एक मजबूत बुनियाद प्रतिरक्षा की दृष्टि से भी महत्त्व रखती है क्योंकि इसके बिना आर्थिक विकास का प्रश्न ही नहीं उठता। नेहरू की विकास रणनीति के फलस्वरूप भारत विश्व के औद्योगीकृत राष्ट्रों में दसवाँ स्थान प्राप्त कर सका। हमारी पहली पाँच योजनाओं के दौरान हुई प्रगति के बारे में छठी योजना के प्रारूप ने लिखा: "यह वस्तुत: बड़े राष्ट्रीय गर्व की बात है कि इस काल के दौरान, एक अवरुद्ध एवं पराश्रित अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण किया गया और इसे अधिक आत्मनिर्भर बनाया गया।" नेहरू विकास मॉडल की अन्य विशिष्ट उपलब्धियाँ निम्नलिखित हैं-

1. बीज-खाद टेक्नोलॉजी के प्रयोग से कृषि उत्पादिता (Agricultural Productivity) में भारी वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप देश खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो गया और खाद्यान्नों के भारी रक्षित भंडार इकट्ठे हो गए;
2. पूँजी वस्तु क्षेत्र में कारगर औद्योगीकरण और इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्र को प्रमुख कार्यभाग अदा करना पड़ा। इससे भारत की औद्योगिक क्षमता का विस्तार एवं विशाखन हुआ। भारत अब उपभोग वस्तुओं में और मूल वस्तुओं अर्थात् इस्पात, सीमेंट में आत्मनिर्भर है जबकि नये उद्योगों अर्थात् उर्वरकों की क्षमता का तेजी से विस्तार हो रहा है।
3. सिंचाई, संचालन शक्ति, परिवहन एवं संचार आदि के रूप में आर्थिक आधार संरचना का विकास जो कि द्रुत आर्थिक विकास के लिए आधार मुहेया कर सकता है; और
4. एक आधुनिक औद्योगिक ढांचे को चलाने के लिए विज्ञान एवं तकनॉलाजी का विकास और तकनीकी एवं प्रबन्धकीय संवेर्गो (Technical and managerial cadres) की स्थापना एवं विकास।

नेहरू विकास मॉडल की कमजोरियाँ

भारी उद्योग पर आधारित नेहरू विकास मॉडल में कई कमजोरियाँ अनुभव की गयीं। लगभग तीन दशकों के आयोजन के बावजूद यह राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन-स्तर उपलब्ध कराने में असफल रहा। 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या अब भी निर्धनता स्तर केनीचे रह रही थी। बेरोजगार और अल्परोजगार व्यक्तियों की संख्या बहुत ज्यादा थी और यह लगातार बढ़ रही थी। आय तथा सम्पत्ति की असमानताएँ और गम्भीर होती जा रही थी और कुछ लोगों के हाथों में आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण बढ़ता जा रहा था। भू-सुधारों को सही ढंग से लागू नहीं किया गया और इस कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत अधिक असंतोष है। इन सबके अतिरिक्त देश में कभी एक और कभी दूसरी वस्तु का अभाव बना रहता है और इसके परिणामस्वरूप देश में एक भयंकर स्फीतिकारी दबाव पैदा हो गया है। इन परिस्थितियों को देखते हुए श्री चरण सिंह जैसे कुछ राजनीतिज्ञों ने तथा कथित 'आर्थिक विकास के गाँधीवादी मॉडल' के प्रयोग का समर्थन किया।

विकास गाँधीवादी मॉडल

महात्मा गाँधी कोई प्रशिक्षित अर्थशास्त्री नहीं थे और इसलिए उन्होंने विकास का कोई मॉडल तैयार नहीं किया। परंतु उन्होंने भारतीय कृषि, उद्योग आदि के विकास के लिए कुछ नीतियों का समर्थन अवश्य किया। आचार्य श्रीमन नारायण ने 1944 में गाँधीवादी योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की और बाद में 1948 में उसकी पृष्टि की। ये प्रकाशन गाँधीवादी आयोजन या विकास के गाँधीवादी ढांचे का आधार हैं।

गाँधीवादी योजना का मूल उद्देश्य यह है कि भारतीय जनता के भौतिक एवं सांस्कृतिक स्तर को उन्नत किया जाए ताकि 10 वर्षों के अन्दर न्यूनतम जीवन-स्तर प्राप्त किया जा सके। गाँधीवादी योजना सबसे पहले भारत के 5 लाख गाँवों की आर्थिक दशा उन्नत करना चाहती है और इसलिए कृषि के वैज्ञानिक विकास और कुटीर उद्योगों के विस्तार पर बल देती है।

गाँधीवादी योजना का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य भारतीय आर्थिक आयोजन में कृषि-सुधार को बढ़ावा देना है। कृषि विकास का मुख्य लक्ष्य खाद्यान्नों में राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता और खाद्य-पदार्थों में अधिकतम क्षेत्री स्वायलम्बिता प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति के लिए न केवल बड़ी मात्रा में अच्छे कृषि-आदानों का प्रयोग आवश्यक है बल्कि भू-सुधारों का प्रयोग भी करना होगा। इसके लिए काश्तकारी प्रणाली में परिवर्तन, भू-स्वामित्व अधिकारों का उन्मूलन, जोतों की चकबन्दी, सहकारी समितियों क गठन आदि उपाय इस्तेमाल करने होंगे। महाजन-व्यवस्था को समाप्त करना होगा और किसानों को अधिक मात्रा में ऋण सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी। गाँधीवादी योजना में डेरी उद्योग (Dairy farming) पर विशेष बल दिया गया और इसे कृषि का एक सहायक व्यवसाय माना गया।

कुटीर उद्योग

गाँधीवादी योजना का मुख्य उद्देश्य ग्राम समाज में अधिकतम आत्मनिर्भरता प्राप्त करना हैं इसलिए इस योजना में कुटीर उद्योगों के पुनःस्थापन, विकास एवं विस्तार की समस्याओं का कृषि के साथ-साथ विस्तार वर्णन किया गया। कताई एवं बुनाई को प्रथम स्थान दिया गया। यह उल्लेख किया गया कि खादी के उत्पादन को उतना ही महत्त्व दिया जाना चाहिए जितना कि चावल और गेहूँ के उत्पादन को दिया जाता है। "जैसे गाँवों के लोग अपनी रोटी और चावल बनाते हैं, उसी प्रकार उन्हें अपने निजी प्रयोग के लिए खादी तैयार करनी चाहिए। यदि वे अपनी आवश्यकता से अधिक पैदा करते हैं, तो इस अतिरेक को बेच सकते हैं।" गाँधीवादी योजना में प्रत्येक गाँव को कपड़े के उत्पादन में स्वावलम्बी बनाने की योजना दी गई है। इसके लिए प्रतयेक ग्रामवादी से यह आशा की जाती है कि यह ग्राम उद्योगों के विकास एवं गठन में सक्रिय भाग अदा करे। इसके साथ-साथ गाँधीवादी योजना राज्य से यह अपेक्षा करती है कि वह ग्रामीण कुटीर उद्योगों के पुनरुस्थान एवं विकास को औद्योगिक आयोजन का मुख्य केंद्र बनाए। इसे दस्तकारों को हस्तशिल्पों के संबंध में तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाएँ उपलब्ध करानी होगी; कच्चे माल के क्रय और तैयार माल के विक्रय के लिए सहकारी समितियाँ कायम करनी होगी, कुटीर उद्योगों को बड़े पैमाने की इकाइयों की अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध सुरक्षा देनी होगी और कुछ ऐसे कुटीर उद्योगों को साहाय्य (Subsidies) देने होंगे जो इसके बिना विकसित ही नहीं हो सकते और साथ ही दस्तकारों एवं सहकारी समितियों को सस्ती दर पर वित्त उपलब्ध कराना होगा।

मूल उद्योग (Basic Industries)

गाँधीवादी के बारे में एक मिथ्या धारण बनी हुई है कि वे बडे पैमाने के उद्योगों के विरुद्ध थे। इसके विरुद्ध गाँधीवादी योजना में कुछ चुने हुए मूल एवं कुंजी उद्योगों की आवश्यकता एवं महत्त्व को स्वीकार किया गया है। इनमें उल्लेखनीय हैं- प्रतिरक्षा उद्योग, जल-विद्युत एवं तापीय संचालन-शक्ति प्रजनन खानें तथा धातुकर्म, मशीनरी एवं मशीनी औजार, भारी इंजीनियरिंग और भारी रसायन। गाँधीवादी योजना यह चाहती है कि मूल उद्योगों का विकास कुटीर उद्योगों के विकास में हस्तक्षेप न करे या इनमें बाधा न बने। गाँधीवादी योजना का सबसे अधिक वैज्ञानिक पहलू यह है कि मूल तथा कुंजी उद्योगों का स्वामित्व एवं प्रबंध राजय के हाथ में होना चाहिए या दूसरे शब्दों में ये उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित होने चाहिए।

गाँधीवादी की मशीनरी की धारणा के बारे में काफी गलतफहमी हैं साधारणतया, लोग यह समझते हैं कि गाँधीजी का कुटीर उद्योगों एवं हस्तशिल्पों पर बल देना उनके आधुनिक मशीनरी के प्रति विरोध का संकेत है। यह गलत हैं गाँधीजी सभी प्रकार की मशीनरी के विरुद्ध नहीं थे क्योंकि चरखा भी एक प्रकार की मशनी हैं किन्तु गाँधीजी मशीनरी की सनक और इसके अन्धाधुन्ध विस्तार के विरुद्ध थे। उनका विश्वास था कि कारखाना पद्धति, मशीनरी का विस्तृत प्रयोग करके, कुछ पूंजीपतियों द्वारा श्रम के शोषण का साधन बन गयी है। वे मशीनरी और आधुनिक सुविधाओं का स्वागत करते थे परन्तु शर्त यह है कि इनके प्रयोग से ग्रामीणों का भार हल्का होना चाहिए और मानवीय श्रम का विस्थापन नहीं होना चाहिए। मशीनरी अच्छी है यदि यह सबके हित को प्रोन्नत करती है; यह एक अभिशाप है यदि यह कुछ लोगों के हित को बढ़ाती है।

यदि हम गाँधीवादी योजना का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें, तो हमें पता चलता है कि इसका उद्देश्य कृषि एवं उद्योगों का साथ-साथ विकास करना है और इनमें समन्वय स्थापित करना है। हस्तशिल्पों और कुटीर उद्योगों पर बल देने का उद्देश्य उत्पादन के साथ-साथ रोजगार का भी विस्तार करना है। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् भारतीय समाज पर नेहरूजी छा गये थे और गाँधीजी तथा उनके आर्थिक विचार भुला दिए गए। इनकी अपेक्षा रूसी अनुभव के आधार पर भारतीय आयोजन का मॉडल लागू कर दिया गया। 25 वर्षों के बाद जब देश 1973 और 1975 के बीच आर्थिक संकट में ग्रस्त हो गया, तो लोगों ने विकास के नेहरू मॉडल की अपेक्षा गाँधीवादी योजना को एक सम्भव विकल्प के रूप में सोचना शुरू किया। जनता पार्टी शासन के छोटे से काल के दौरान इनमें से कुछ विचार छठी योजना के प्रारूप में सम्मिलित किए गए। भारतीय संदर्भ में विकास की गाँधीवादी योजना एक हद तक अवश्य ही लाभदायक हो सकती है और इसलिए इसकी सिफारिश की जा सकती हैं ठोस रूप में विकास के गाँधीवादी मॉडल के लिए आयोजन की वर्तमान प्रणाली में निम्नलिखित परिवर्तन करने होंगे-

1. ***उत्पादन-प्रेरित आयोजन की अपेक्षा रोजगार- 'प्रेरित आयोजन की स्थापना'*** यहाँ मूल बात यह है कि बेरोजगारी हमारी सबसे बड़ी शत्रु है और इसके समाधान में ही निर्धनता एवं असमानताओं की समस्याओं का

समाधान निहित हैं इसलिए यह जरूरी है कि उत्पादन-प्रेरित आयोजन का प्रतिस्थापन रोजगार-प्रेरित आयोजन (Employment oriented Planning) द्वारा किया जाए। इसके लिए ऐसे क्षेत्र निर्धारित करने आवश्यक हैं जो अधिक रोजगार क्षमता रखतें हों और जिनमें अधिक एवं कुशल उत्पादन भी सम्भव हो। "मोटे तौर पर पूंजी को अपेक्षा श्रम का अधिक प्रयोग करना चाहिए और किसी भी हालत में सरकार को भविष्य में किसी पूंजी-प्रधान परियोजना की अनुमति नहीं देनी चाहिए जहाँ कहीं भी श्रम-प्रधान विकल्प उपलब्ध हो।"

2. ***कृषि एवं रोजगार क्षमता***- कृषि के जिन क्षेत्रों में अधिक रोजगार कायम करने की अधिक क्षमता है, वे हैं; (क) खेती जिसमें पशुपालन, कम्पोस्ट तैयार करना, सफाई और गोबर गैस; (ख) ग्राम निर्माण कार्य अर्थात् सिंचाई परियोजनाएँ भू-रक्षण, (Soil conservation,) भू-उद्धरण (Soil reclamation) वनरोपण आदि और (ग) ग्राम तथा कुटीर उद्योग। गहन खेती के आधीन भूमि पर अपेक्षाकृत कहीं अधिक श्रमिकों को रोजगार दिलाया जा सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में 1971 में प्रति 100 एकड़ पर 39 श्रमिक लगे हुए थे और इस दृष्टि से भारत एक निम्न निष्पादन (Low performance) वाला देश माना जाता है परन्तु इसकी तुलना में जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान और मिश्र में 1965 के दौरान प्रति 100 एकड़ पर क्रमशः 87, 79 और 71 श्रमिक कार्य करते थे। ये देश उच्च-निष्पादन वाले राष्ट्र हैं जिनमें छोटी तथा अधिक श्रम-प्रधान फार्मों के आधार पर खेती की जाती हैं इन देशों के अनुभव से पता चलता है कि कृषि में कुल उत्पादन की वृद्धि के साथ-साथ 500 से 600 लाख अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार दिलाया जा सकता है। नये सिंचाई प्राप्त क्षेत्रों में रोजगार क्षमता (Employment potential) को 60 प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है। यदि यन्त्रीकरण (Mechanisation) सीमित रखा जाए अर्थात् केवल ऐसी मशीनों का प्रयोग किया जाए जो मानवीय प्रयास में सहायक हों या इसको दबाने की अपेक्षा इसके बोझ को हल्का करें.... जापानी किस्म की फार्म-मशीनरी।"

3. ***बड़े बनाम छोटे उद्योग***- विकास का गाँधीवादी मॉडल कुटीर तथा लघु स्तर के उद्योगों के पक्ष में है और यह ऐसे बड़े पैमाने के उद्योगों के विरुद्ध है जो उपभोग वस्तुएँ उत्पन्न करते हैं। चरणसिंह ने लिखा, "भविष्य में किसी मध्यम या बड़े पैमाने के उद्यम की स्थापना की अनुमति नहीं दी जाएगी यदि वह ऐसी वस्तुएँ या सेवाएँ उत्पन्न करता है जो कुटीर या लघु-स्तर के उद्यमों द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं और किसी लघु स्तर उद्योग की स्थापना की इजाजत नहीं दी जाएगी जो ऐसी वस्तुएँ एवं सेवाएँ उत्पन्न करेगा जो कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पन्न की जा सकती है।" चरणसिंह तो उपभोग-वस्तुएँ उत्पन्न करने वाले बड़े पैमाने के उद्योगों के इतने धिक विरुद्ध थे कि उनका कहना था कि ऐसी उत्पादन-इकाइयाँ या तो अपने सारे उत्पादन का निर्यात करें या वे बन्द कर देनी चाहिए।

4. ***न्यायपूर्ण वितरण*** (Equitable Distribution)- भले ही हम समाजवाद की रट लगाए हुए हैं, परन्तु कुछ हाथों में आर्थिक शक्ति का बढ़ता हुआ संकेद्रण और आय की असमानता भारतीय अर्थव्यवस्था की दो प्रमुख बुराइयाँ हैं। गाँधीजी वितरण की इस समस्या के संबंध में सम्भवतः सबसे उत्तम एवं स्वाभाविक समाधान प्रस्तुत करते हैं। सम्पत्ति का संचयन एवं आर्थिक शक्ति का संकेद्रण प्रत्यक्ष रूप में उत्पादन के साधनों के केंद्रीकरण एवं बड़े पैमाने के उत्पादन के केंद्रीकरण का परिणाम है और जब कभी भी बड़ पैमाने का उत्पादन अनिवार्य हो जाए (जैसा कि मूल एवं कुंजी उद्योगों में), तो इसे सरकारी स्वामित्व एवं प्रबंध के आधीन करना चाहिए। गाँधीवादी मॉडल में वितरण की समस्या को उत्पादन के स्तर पर हल करने की चेष्टा की गई है, न कि उपभोग के स्तर पर।

गाँधीवादी मॉडल में राष्ट्रीय न्यूनतम जीवन-स्तर को कम से कम समय में प्राप्त करने की आशा व्यक्त की गई है। इसमें स्थिरता के साथ विकास और आय एवं सम्पत्ति के संकेद्रण को समाप्त करने का लक्ष्य भी रखा गया है। दूसरे शब्दों में, इसमें यह प्रयास किया गया है कि नेहरू-महलनोबिस मॉडल की कमजोरियाँ दूर की जा सकें।